अनुक्रमणिका

प्राक्कथन vii

आमुख ix

प्रस्तावना xi

दिव्य शिशु 1

असाधारण कन्या 4

नववधूः तेरह वर्ष की आयु में 8

माँ के दिव्य-अलौकिक स्वरुप का प्रकटीकरण 12

माँ द्वारा स्वयं की स्वयं से दीक्षा 17

पद्म के अनुरक्त भ्रमर 21

तीन अतिशेय प्रेमी भक्त 24

कीर्तन अवधि में रूपांतर 27

दो अलौकिक घटनाऐं..... 29
चाँवल के नौ दाने..... 31
माँ का नमाज पढ़ना..... 33
आनन्दमयी माँ का अवतरण..... 35
बंगाल से विदा..... 40
हिमालय में प्रवास..... 43
शिव के गृह में..... 48
हरिद्वार कुंभ मेला..... 51
दर-दर घूमते तीर्थयात्रीगण..... 53
माँ की महात्मा गांधी से भेंट..... 56
माँ साधुओं की संगति में..... 58
सावित्री महायज्ञ..... 60
अनुगृह की उपस्थिति में..... 62
आचरण द्वारा उपदेश..... 65
माँ की छत्रछाया में..... 68
अव्यक्त का आह्वाहन..... 73
माँ के तात्विक उपदेश..... 77
माँ द्वारा प्रवर्तित सत्कार्य अभी भी गतिमान..... 83
नवीन घटनाऐं..... 85
मेरे संस्मरण..... 94

आनन्दमयी माँ के आश्रम..... 106

प्राक्कथन

आनन्दमयी माँ कौन है और हम उनके बारे में कैसे लिख सकते हैं ?

मैं लगातार छः वर्षों तक (1976-1982) माँ के साथ रहा। इस पूरी अवधि में मैंने एक क्षण के लिए भी माँ को एक साधारण मनुष्य के रूप में नहीं देखा लेकिन उनकी छवि में मैंने हमेशा एक संपूर्ण और आदर्श दिव्य स्वरूप के दर्शन किए। श्री श्री माँ ने स्वयं अपना परिचय उनके अवसरों पर 'पूर्णब्रह्मनारायण' और 'जो कहो वही' कहकर दिया है।

माँ के एक अमेरिकन शिष्य, स्वामी मंगलानंद ने भारत में हमारे आश्रम में अनेक वर्ष निवास किया है। उन्होंने माँ के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त विवरण इस पठनीय पुस्तक के रुप में लिखकर एक अमूल्य सेवा का कार्य किया है।

माँ का आध्यात्मिक संदेश है कि: 'सब एक है, हम इस धरती पर परस्पर झगड़ने हेतु एकत्रित नहीं हुये हैं, अपितु अपने जीवन का सर्वोत्तम उपयोग-सत्यानुभूति हेतु आये हैं।'

इस पुस्तक के पृष्ठों के पढ़ने पर आप स्वयं से भिन्न किसी ऐतिहासिक पात्र के विषय में नहीं पढेंगे अपितु आप वस्तुतः अपने स्वयं के अन्तस् की गहराईयों की खोज प्रारम्भ कर चुके होंगे। पुस्तक की समाप्ति पर आप निश्चित ही अपने हृदय की अन्तरतम गहराईयों से उठती हुई माँ से एक हो जाने की एक अपूर्व लालसा का अनुभव करेंगे। यह आपको अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर ले जायेगी तथा आपकी विकास प्रक्रिया के उद्देश्य की परिपूर्णता के पथ को प्रकाशित करने वाली ज्योति का कार्य करेगी। अन्त में दृष्ट होगा कि पथ, पुरुषार्थ व लक्ष्य सभी कुछ दिव्य परमात्मस्वरुपता माँ ही है, उनसे भिन्न कुछ नहीं है।

जय माँ!

— स्वामी केदारनाथ
माता आनन्दमयी तपो भूमि,
ओंकारेश्वर,
मध्यप्रदेश, भारत

आमुख

आनन्दमयी माँ के जीवन व उपदेशों को लेकर अनेक प्रामाणिक एवं उत्कृष्ट रुप से लिखित पुस्तकें उपलब्ध है। किन्तु वर्तमान में अधिकतर पुस्तकों का आकार कुछ वृहद् है, तथा उनकी उपलब्धि भी सीमित स्थानों पर ही है।

माँ के जीवन के प्रमुख बिन्दुओं, व चयनित चित्रों सहित एक संक्षिप्त जीवनी का अभाव, अनुभव किया जा रहा था। ऐसी पुस्तक जिसकी भेंट राशि मध्यम हो, पढ़ने में सुलभ हो तथा वितरण विस्तृत हो व पाठकों को आनन्दमयी माँ के जीवन से परिचित कराने में सहायक बने। अधिक विस्तार से जानने के इच्छुक साधकों के लिए प्रचलित साहित्य उपलब्ध हैं। आशा है हमारे आश्रम के साधकों के आग्रह पर विशेष रूप से लिखी गई यह संक्षिप्त जीवनी इस कमी को पूर्ण करेगी।

न्यूनाधिक मात्रा में लगभग सभी जीवनियाँ व्यक्तिपरक विचारों को दर्शाती है, यह पुस्तक भी निश्चित ही इसका अपवाद नहीं है। इसका आशय संदर्भ ग्रन्थ के रुप में प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु एक दिव्य प्रेरणात्मक व चिरस्मरणीय जीवन का अनौपचारिक सहज परिचय मात्र है।

यद्यपि आनन्दमयी माँ की जीवन लीला अलौकिक एवं अद्‌भुत घटनाओं से परिपूर्ण है, किन्तु यह गाथा पीढ़ी दर पीढ़ी लोक कथाओं के रुप में प्रचलित किसी विगतकालीन काल्पनिक पात्र की कथा नहीं है। इस लेखक सहित आज भी अनेक भक्त हैं जो माँ के जीवन वृतान्त में उल्लेखित घटनाओं के साक्षी रहे है। अधिकतर घटनायें मित्रों सम्बन्धियों व अन्यों के अनुभव से ली गई है। जिन व्यक्तियों को माँ के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे आगामी पीढ़ीयों हेतु माँ की स्मृति को जागृत रखते हुये माँ के उपदेशों को प्रसंगोचित बनाये रखने का निरन्तर प्रयास करते रहें जिससे हमारे मध्य प्रकट प्रवाह हुआ वह अद्वितीय अस्तित्व मानव जाति को प्रभावित कर उसके उत्थान में सहायक बने।

— आचार्य मंगलानंद
माता आनन्दमयी तपोभूमि,
ओंकारेश्वर,
मध्यप्रदेश, भारत

प्रस्तावना

मानवता के इतिहास में, इस जगत से अन्धकार को दूर कर आध्यात्मिक प्रकाश फैलाने, महान साधु-सन्तों का पदार्पण होता रहा है। भारतवर्ष में ऐसी मान्यता है कि समय-समय पर अशुभ पर शुभ की विजय हेतु तथा मानवमात्र को सत्य का मार्ग दिखलाने के लिए दिव्य शक्तियों का प्राकट्य अथवा अवतार होता है।

अनेक अवसरों पर आनन्दमयी माँ से प्रश्न किया जाता रहा, "आप कौन है?" माँ इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न अवसरों पर विभिन्न रुपों से देतीं। एक अवसर पर माँ ने अपने एक निकटस्थ भक्त से कहा, *"मैं सभी जिज्ञासुओं की पवित्र आकांक्षाओं का व्यक्त रुप हूं। तुमने इस शरीर को चाहा, इसी से यह तुम्हारे मध्य है।"* इस परिभाषा से हम पाते हैं कि माँ का अवतरण हम सभी के लिये हुआ है। माँ उन सभी की है जिनके हृदय में दिव्यता को पाने की तीव्र लालसा है। माँ के जीवन के सम्बन्ध में जानना व उसका अध्ययन करना अत्यन्त सार्थक व महत्वपूर्ण है।

माँ प्रायः कहती कि उनका जन्म अन्य जीवों की भांति कर्मफलावशत् नही हुआ है। हम अपने कर्म से बंधे होने के कारण अपना प्रारब्ध भोगने

को बाध्य है। माँ पूर्णतः 'मुक्त' थी, तथा उनका प्रत्येक शब्द व कार्य इस मुक्तता एवं दिव्यता की अभिव्यक्ति था अतः माँ के जीवन की छोटी से छोटी घटना सदाचरण की सीख देती है। जिन्होंने भी माँ का दर्शन किया है, उन सभी ने अनुभव किया है कि माँ की प्रत्येक दैहिक चेष्टा एक रमणीय लालित्य की दिव्य अभिव्यक्ति थी।

माँ प्रायः कहती कि उनकी प्रत्येक चेष्टा हम सबके लिये है। संसार के मंच पर खेली गई यह लीला माँ से युक्त हुये भक्तों के लिये ही हुई। माँ सभी आध्यात्मिक शक्तियों व कृपा का भण्डार थी तथा उन्हें जानने वाले व उनका स्मरण करने वालों के लिये आज भी है।

माँ ने ऐसा भी कहा है कि जब तक माँ किसी का स्मरण न करें वह व्यक्ति माँ का चिन्तन नहीं कर सकता। अतः माँ के जीवन के विषय में जानने अथवा माँ की दिव्य जीवन लीला का चिन्तन करने से हम माँ के सद्गुणों से एकरस होकर अपने जीवन के उत्थान की ओर अग्रसर होते हैं। हम जितना अधिक माँ के जीवन व उपदेशों के विषय में जानेंगे, वह शाश्वत अस्तित्व उतना ही हमारे भीतर प्रवेश करेगा तथा उनकी वाणी निरन्तर आज के इस कठिन समय में हमारे जीवन का मार्गदर्शन करती रहेगी।

आनन्दमयी का युवा रूप – निर्मला सुंदरी देवी

दिव्य शिशु

सन् 1896 दिनांक 30 अप्रेल के शुभ दिवस, पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) के त्रिपुरा जिला ग्राम खेवड़ा में एक अतीव सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। आपकी वंश परम्परा का मूल स्रोत भगवान विष्णु के परम अनुयायी कश्यप ऋषि से निसृत हुआ है।

अत्यन्त सरल, सदाचारी एवं धर्मावलम्बी स्वभाव की प्रतिमूर्ति उनकी माता मोक्षदा सुन्दरी देवी की कालान्तर में अपनी इस अद्‌भुत् कन्या रत्न के 'माँ' के रूप के उद्‌भव में प्रमुख भूमिका रही थी। तद्‌नन्तर सभी लोग उन्हें स्नेहवशात् "दीदी माँ" नाम से सम्बोधित करते थे। बालिका के जन्म से पूर्व दीदी माँ को अनेक देवी-देवताओं के दर्शन होते थे तथा एक दिन एक देवी मूर्ति मानो अपूर्व ज्योति चक्र के रूप में घूमते-घूमते उनके शरीर में प्रविष्ट हो गई थी।

बालिका के पिता श्री विपिन बिहारी भट्टाचार्य के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनका आध्यात्मिक रूझान एवं तीव्र सांसारिक वैराग्य था। उनका अधिकतर समय विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुये मधुर भगवन्नाम-संकीर्तन में व्यतीत होता था। कई बार वह महीनों गायब रहते और भिक्षुक की तरह जीवन यापन करते हुए आध्यात्मिक अभ्यास में लगे रहते।

बालिका का नामकरण 'निर्मला सुन्दरी देवी' किया गया जिसका अर्थ त्रुटिहीन सौंदर्य की देवी है। माँ ने अनेक अवसरों पर कहा है *"मैं जैसी जन्म के समय थी, वैसी ही बाल्यकाल में थी तथा वैसी ही आज भी हूँ।"* दीदी माँ बताती हैं कि जन्म के समय सामान्य शिशु की भाँति रूदन न करते हुये बालिका का मुखमण्डल शान्त, सजग एवं ज्योतिर्मय था। तत्पश्चात् जन्म के समय उपस्थित व्यक्तियों का तथा शैशवकाल में घटित विभिन्न घटनाओं का उल्लेख कर वे सभी को चकित कर देती थी।

शिशु की अलौकिकता का प्रथम आभास माता को प्रारम्भिक काल में ही हो गया था। एक दिन 'निर्मला सुन्दरी' पालने में सो रही थी। दीदी माँ अपने गृह कार्य में संलग्न थीं, तभी उन्हें एक प्रदीप्त मुख मण्डल एवं जटाजूटधारी सन्त पुरूष, करबद्ध मुद्रा में शिशु के समीप खड़े दृष्ट हुए। उन्होंने माता को सम्बोधित करते हुये कहा – "यह सामान्य बालिका नहीं है। इन्हें सामान्य जीवन के नियमों में सीमाबद्ध करना भी सम्भव नहीं होगा। यह अन्य कोई नहीं अपितु सम्पूर्ण जगत की माँ है।" शिशु को आशीर्वाद प्रदान कर वे चले गये। उनका अनुगमन करने पर दीदी माँ ने पाया कि वे तत्क्षण अदृश्य हो गये थे।

वयस वर्धन के साथ-साथ बालिका का अत्यन्त स्नेही तथा मृदु स्वभाव प्रकट होने लगा तथा बाल्यकाल से ही उसमें एक प्रमुख विशिष्टता दृष्टिगोचर हुई – बालिका की स्वयं की कोई इच्छा कदापि नहीं होती थी, न ही कोई कार्य सम्पादन स्वयं के लिए होता था। वह तो एक चिर संतुष्ट एवं अलौकिक आनन्द में ही विचरती थी। उनके सभी क्रिया-कलाप एवं गमनागमन सदैव अन्य की कामना एवं अपेक्षापूर्ति से प्रेरित होते थे। धर्म, समाज तथा जातिगत मान्यताओं से परे निर्मला अपने गाँव में सभी की दुलारी थी तथा हर समय सभी की सेवा व सहायता हेतु तत्पर रहती थी।

उनकी निकटतम सहचरी थी उनकी दादी माँ जिन्हें स्नेहवशात् 'ठाकुर माँ' नाम से सम्बोधित किया जाता था। नन्हीं बालिका यदा-कदा अपनी इन वयोवृद्ध दादी माँ द्वारा उच्चारित संस्कृत के श्लोकों की परिशुद्धता में विद्वतापूर्ण संशोधन कर उन्हें चमत्कृत कर देती थी। एक अवसर पर उन्होंने 'ठाकुर माँ' के समक्ष पूजा-पद्धति से सम्बन्धित जटिल मुद्रायें विशुद्ध रूप से प्रस्तुत करके भी उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया था।

एक अन्य अवसर पर खेल-खेल में, अनायास निर्मला की तीक्ष्ण प्रखर दृष्टि ठाकुर माँ पर केन्द्रित होते ही वे गहन समाधि में प्रवेश कर गई थीं। चार वर्ष की आयु में माता के संग कीर्तन में गई बालिका नाम संकीर्तन श्रवण करने पर गहन आन्तरिक भाव में इतनी निमग्न हो गईं कि उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

असाधारण कन्या

हर समय प्रसन्नचित्त तथा मधुर स्मित की आभा लिए तथा वृक्ष-वनस्पति, लताओं, सूर्य किरणों एवं स्वच्छ वायु के झोकों को प्रिय सहचर के रूप में रखते हुए, नन्हीं निर्मला ने कन्यारूप में प्रवेश किया।

शीतोष्ण, वर्षा एवं अन्य प्राकृतिक तीव्रताओं से अप्रभावित वह सूर्य की तपन में हँसते-गाते प्रकृति से एकरूप हो सहज रूप से विचरती, अनेक अवसरों पर उसे पशु-पक्षी, लताओं, पौधों एवं केवल उसे ही दिखायी देते प्राणियों से वार्तालाप करते हुए भी देखा गया।

बाल्यकाल में एक अवसर पर अपनी सखियों के संग वन मार्ग पर भ्रमण करते समय गौओं का एक समूह उनके सम्मुख आ गया। अन्य सभी सखियाँ भयभीत हो पर्वत पर चढ़ गई किन्तु उन्होंने साश्चर्य देखा कि सभी गौएँ नन्हीं निर्मला को घेर कर स्नेहपूर्वक दुलार रही थी तथा अपने मस्तक से उसके चरण स्पर्श कर रही थी।

बालिका में प्रायः दृष्ट होने वाली अमनस्कता तथा गहन भावावस्था को देखकर दीदी माँ सशंकित हो उठती कि कहीं उनकी पुत्री मन्दबुद्धि

तो नहीं है। प्रारम्भ में उन्हें भान नहीं हुआ कि यह किसी मानसिक रोग के लक्षण नहीं हैं अपितु यौगिक समाधि की उच्चतर अवस्था का निदर्शन है।

भोजन करते-करते कभी-कभी निर्मला का हाथ कुछ क्षणों के लिए मध्य में स्थिर हो जाता और वह आकाश की ओर एकटक दृष्टि से निहारती रहती थी। अनेक वर्ष पश्चात् दीदी माँ द्वारा इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर माँ ने प्रत्युत्तर में हँसते हुए कहा कि वे तो अन्तःदृष्टि से आकाश में विचरण करते देवी-देवताओं को देखती रहती थी।

निर्मला ने मानव जीवन के प्रत्येक चरण की अवस्था के अनुरूप धर्म को उत्कृष्ट एवं परिपूर्णरूपेण प्रकट किया था। बाल्यावस्था में मधुर, निःस्वार्थ एवं हृदय की सरलता का भाव, किशोरावस्था में प्रवेश करने पर अन्य सभी सद्‌गुण यथा – सत्यपालन, माता-पिता, गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं करना, स्वभाव में निष्कपटता इत्यादि सभी जीवनमूल्य समयानुसार व्यक्त होते रहे।

एक अवसर पर वह सम्बन्धियों के संग निकटवर्ती ग्राम में गई थी। उसे मन्दिर के समीप ठहरने का आदेश देकर सभी महिलाऐं स्थानीय बाजार में चली गई। अनुमानित समय से अधिक व्यतीत होने पर एकाएक उन्हें निर्मला का स्मरण आया। उनका अनुमान था कि बालिका अवश्य ही इधर-उधर चली गई होगी। किन्तु शीघ्रता से लौटने पर उन्होंने देखा कि नन्हीं निर्मला आज्ञा का पालन करते हुए, इतने घण्टे बीत जाने पर भी वहीं जस-की-तस बैठी हुई थी।

निर्मला सभी धर्मो के क्रिया-कलापों के प्रति आकर्षित होती थी। हिन्दू और मुसलमान सभी ग्रामवासियों को वह समान रूप से प्रिय थी। एक समय गाँव के निकट लगे ईसाई कैम्प में उनकी ईश-स्तुति सुनने निर्मला रात्रि में अकेली चली गई थी। संध्या का समय निर्मला अधिकतर अपने पिता के संग भगवन्नाम संकीर्तन में व्यतीत करती थी।

सरल, सहज बालिका अनेक अवसरों पर अपने अंतर्ज्ञान से अपने सहचरों एवं ज्येष्ठजन को अचम्भित कर देती थी। एक दिन खेल-खेल में निर्मला ने गीली बालू से एक सुन्दर गोलाकार वृत्त बनाया और सबको दिखाते हुये कहने लगी – *"जिस प्रकार शालिग्राम में नारायण विद्यमान हैं, उसी प्रकार इसमें मैं दैवीय तथा अन्य सभी स्वरूपों को देख रही हूँ। सब एक में है तथा वही एक सब में है।"* इतना कहकर बालू के गोले को बिखेरकर हँसते हुए फिर खेलने लगी।

इसी प्रकार खेल के मध्य अकस्मात् वे शान्त, स्थिर एवं अन्तर्मुखी हो जाती, मुखमण्डल एक त्वरित आभा से आलोकित हो उठता। प्रत्यक्षदर्शियों को लगता मानो आकाश में बिजली कौंधी हो। इस प्रकार की अवस्था होने पर कदाचित् कभी-कभी उनके मुख से विशुद्ध संस्कृत में मन्त्र प्रस्फुटित होने लगते थे।

बालिका निर्मला ने विद्याध्ययन के साथ-साथ एक भारतीय कन्या हेतु शोभनीय सभी गृह कार्यों में दक्षता प्राप्त कर ली थी। सिलाई एवं पाक-कला में भी वह अत्यन्त निपुण थी। स्वभाव से मृदु एवं सरल होने पर भी उनके ज्येष्ठजन को स्पष्ट आभास हो गया था कि उनकी कन्या विशिष्ट शक्तिरूपा है, जिसके साथ खिलवाड़ करना उचित नहीं होगा।

एक दिन जब उसे बर्तन में दही भर कर रसोई में लाने के लिए कहा गया तो उसने आज्ञापारिता करते हुए बर्तन को इस तरह पूरा भर दिया कि उसमें उपर तक जरा सी भी जगह खाली नहीं बची। उसे डाँटते हुए कहा गया, "नासमझ लड़की, आज तुम्हें ज़रा भी दही नहीं मिलेगी।" ये शब्द उच्चारित होते ही कमरे के बाहर रखा बर्तन टूट गया और सारा दही फर्श पर गिर गया।

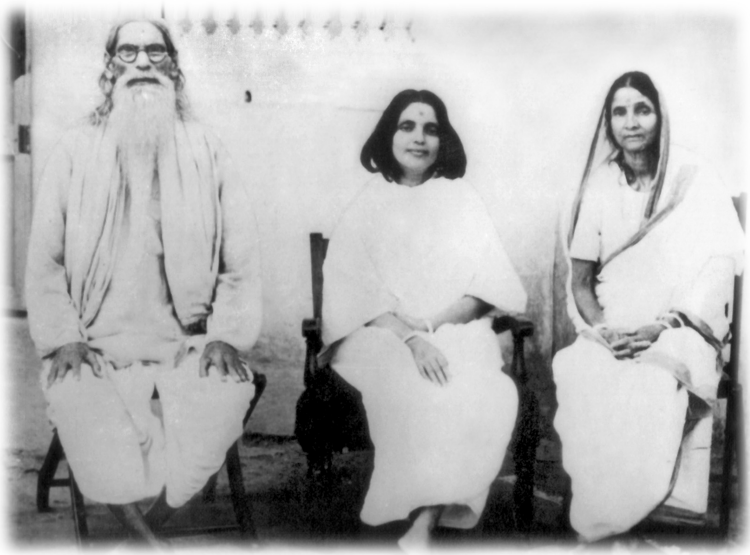

निर्मला अपने माता-पिता बिपिन भट्टाचार्य और मोक्षदा देवी के साथ

नववधू : तेरह वर्ष की आयु में

प्रचलित प्रथानुसार निर्मला के विवाह की व्यवस्था अल्प वयस में कर दी गई थी। निकटस्थ आटपाड़ा ग्राम के निवासी, एक ब्राह्मण पुत्र को योग्य वर के रूप में चयनित किया गया तथा सभी आवश्यक व्यावहारिक औपचारिकतायें पूर्ण करने के पश्चात् विवाह संस्कार हेतु तिथि निर्धारित की गई। फरवरी सन् 1909 के शुभ दिवस तेरह वर्षीय निर्मला सुन्दरी का पाणिग्रहण संस्कार श्री रमणी मोहन चक्रवर्ती के संग सम्पन्न हुआ। पुलिस बल में कार्यरत् वर व कन्या की आयु में अन्तर कुछ अधिक था।

विवाह सम्बन्धी सभी धार्मिक विधियों के पूर्ण हो जाने के पश्चात् कन्या अपने माता-पिता के संरक्षण में पुनः अपने गाँव लौट गई। लगभग दो वर्ष व्यतीत हो जाने पर निर्मला को ससुराल भेजा गया। रमणी मोहन का तबादला अन्य स्थान पर होने से नववधू को पति के परिवार के निवास स्थान पर उनके साथ रहने के लिए भेजा गया।

इस नूतन परिवेश में निर्मला ने अपना व्यवहार व आचरण अत्यन्त उत्कृष्ट एवं शालीनता से प्रदर्शित किया। वे एक आदर्श गृहिणी की प्रतिमूर्ति के रूप में ढल गई, मुख पर अधिकतर घूँघट का आवरण

तथा सभी के प्रति विनम्र एवं आदर-सम्मान का भाव रखती। इस शिष्ट मर्यादित वधू ने अपने स्वभाव माधुर्य से शीघ्र ही समस्त परिवार का मन मोह लिया। नव वधू का अधिकतर समय गृहकार्य में व्यतीत होता था। वे प्रत्येक कार्य को इस पूर्णता से निष्पादित करती मानो वे प्रत्येक कार्य में निपुण हो। सतत् गृहकार्य में संलग्न रहने के फलस्वरूप उनके हाथों से रक्तस्राव होने लगता परन्तु प्रसन्नवदना स्वयं के मुख से कभी प्रतिवाद नहीं करती थी किन्तु शीघ्र ही परिवार के सदस्यों को भान हो गया कि उनकी प्रसन्नता हेतु वे अथक प्रयास कर रही थीं।

परिवार के बालक-बालिकायें भी निर्मला से अत्यन्त प्रेम करने लगे तथा उनका आग्रह था कि परिवार की इस नूतन सदस्या को वे किसी अन्य सम्बोधन के स्थान पर 'माँ' कहकर पुकारेंगे। शीघ्र ही नव वधू की पाककला की प्रशंसा भी होने लगी। एक अवसर पर निर्मला को किसी अतिथि हेतु भोजन बनाना था। उन अतिथि को 'मूली' से पूर्णतः अरूचि थी। सारे दिन चेष्टा कर अति सुस्वादु भोजन तैयार किया गया। अतिथि ने तृप्त होकर जब प्रशंसा की तब माँ ने हँसते हुए उन्हें बताया कि सभी व्यंजन, यहाँ तक कि मिष्ठान्न भी 'मूली' से ही बनाए गए थे।

सन् 1914 में अट्ठारह वर्षीय निर्मला को अष्टग्राम से पति श्री रमणी मोहन ने बुलवा भेजा। विदा करते समय दीदी माँ ने अपनी पुत्री को जो सलाह दी वही उनके अद्भुत, दिव्य दाम्पत्य जीवन का मूल मन्त्र बन गई। उन्होंने कहा था "जिस प्रकार अब तक माता-पिता की आज्ञा का सम्मानपूर्वक अनुसरण किया है उसी प्रकार पति को गुरु मान कर उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करती रहना।"

अभी तक श्री रमणी मोहन का विचार था कि उनका विवाह एक साधारण ग्रामीण कन्या के साथ हुआ है। तथा उन्हें यह भी ज्ञात हो गया था कि उनकी पत्नी अत्यन्त परिश्रमी एवं मधुर स्वभाव वाली है। तदनन्तर निर्मला का साहचर्य होने पर उन्होंने पाया कि उनकी पत्नी एक प्रखर ईश्वरीय अलौकिकता से आच्छादित है। इस अनुभूति के उपरान्त

सामान्य दाम्पत्य जीवन का विचार भी उनके मन मस्तिष्क से विलुप्त हो गया। वास्तव में भाग्य ने जिन पुरूष विशेष को निर्मला सुन्दरी के पति एवं संरक्षक हेतु चयनित किया था, वे स्वयं इस गहन, गम्भीर भूमिका को निभाने हेतु उपयुक्त विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। बाद के वर्षों में माँ कहती थीं कि उनके पति के सबोध चित्त में शारीरिक स्तर के विचार अथवा इच्छा कभी उदय ही नहीं होते थे। कदाचित् उनके अवचेतन में अनजाने भी यदि माँ को इस प्रकार का भान हो जाता तब माँ तत्क्षण गहन समाधि में प्रवेश कर जाती थी। विचलित होकर माँ को पुनः सामान्य स्थिति में लाने हेतु रमणी मोहन कीर्तन अथवा मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ कर देते थे। इससे स्वयं उनके चित्त में भी विचार परिवर्तन हो जाता था। जीवनकाल के उत्तरार्द्ध में श्री रमणी मोहन को प्रत्यक्ष अनुभव हो गया था कि माँ 'अखण्ड ब्रह्मचारिणी' अथवा 'सनातन कुमारी' है।

श्री रमणी मोहन अपनी पत्नी को एक दिव्य बालिका के रूप में देखते थे तथा स्वयं को उनके संरक्षक के रूप में देखते थे। तत्पश्चात् उन्होंने श्री माँ को अपने आध्यात्मिक गुरु का स्थान दिया था। माँ पति के प्रति सदैव प्रेम तथा सम्मान का भाव प्रदर्शित करती थीं तथा पूर्णतः आज्ञाकारिणी पत्नी की भूमिका निभाते हुए प्रत्येक कार्य अथवा यात्रा उनकी अनुमति लेकर ही प्रारम्भ करती थीं। माता-पिता के बाद माँ ने पति को ही गुरु माना। कैसा अद्‌भुत था यह परस्पर गुरु भाव!

माँ का सरल, बालसुलभ स्वभाव देखकर श्री रमणी मोहन प्रायः कहा करते थे "तुम अभी अल्प वयस्क हो। तुम्हारी आयु वृद्धि होने पर तुम्हारी सोच में परिवर्तन हो जायेगा।" पूर्व घटनाओं का वर्णन करते समय माँ हँसते हुए कहती थीं *"लगता है मेरी आयु में वृद्धि हुई ही नहीं।"*

पति के संग जीवन के इस नूतन चरण में प्रवेश करने पर फिर एक बार निर्मला पूर्ण भाव दर्शाते हुए सहज सुगमता से अपने कर्तव्य पालन में रत हो गई। पति की सेवा सदा त्रुटिहीन होती। उनकी प्रत्येक सुख-सुविधा पूर्ति हेतु सदैव तत्परता दर्शाते हुए निपुण, कुशल गृहिणी ने अपनी गृहस्थी सम्हाली।

माँ का रूप लावण्य इस समय चरम पर था। लालित्यपूर्ण छरहरी देहयष्टि, घुटनों के नीचे तक लम्बी घनी श्याम केश राशि तथा दिव्य आध्यात्मिक प्रभा से प्रदीप्त उनका मुखमण्डल जिसके दर्शन मात्र से चित्त में स्वतः श्रद्धा का भाव जागृत हो जाता था। एक अवसर पर नवदम्पति दुर्गा पूजा उत्सव हेतु आमंत्रित किए गए थे। तब तक माँ का अधिक व्यक्तियों से परिचय नहीं हुआ था। रक्तवर्ण, साड़ी धारण किये हुए जैसे ही माँ ने प्रवेश किया वहाँ एकत्रित लोग अचम्भित होकर प्रणाम करते हुए कह उठे "वाह! हमारे मध्य साक्षात् माँ दुर्गा पधारी हैं।"

कुछ ही समय के अन्तराल में वहाँ माँ 'रंगा दीदी' के नाम से जानी जाने लगी थीं। प्रत्यक्षदर्शियों का कथन है कि जब वे नदी तट पर जाती थीं तब उनके अलौकिक तेजोमय रूप से समस्त स्थान मानो आलोकित हो उठता था। ऐसा भी देखा गया है कि जब माँ रात्रि के अंधकार में टहल रही होतीं, तब उनकी देह एक मद्धिम ज्योति से आच्छादित दृष्ट होती थी।

अष्टग्राम प्रवास के समय उनके निकटस्थ पड़ोसी श्री हरकुमार राय निर्मला सुन्दरी को 'माँ' शब्द से सम्बोधित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के श्रद्धालु पुरुष थे। उन्होंने माँ के हाथ से प्रसाद ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की किन्तु माँ अपने से संबंधित सभी कार्यों में शालीनता के कठोर नियमों का पालन करती थीं अतः यह निवेदन अस्वीकार कर दिया था। पति की अनुमति पाने के पश्चात् ही प्रसाद प्रदान करने हेतु वे सहमत हुईं।

इसी समय श्री हरकुमार राय ने भविष्यवाणी की थी – "अभी केवल मैं आपको 'माँ' कहकर सम्बोधित कर रहा हूँ, किन्तु एक दिन सारा संसार आपको 'माँ' कहेगा।"